सांख्यका प्रत्यक्ष लक्षण

सांख्य परम्परामें प्रत्यक्ष लक्षणके मुख्य तीन प्रकार हैं। पहिला प्रकार विन्ध्यवासीके लक्षणका है जिसे वाचस्पतिने वार्षगण्यके नामसे निर्दिष्ट किया है (तात्पर्य० पृ० १५५)। दूसरा प्रकार ईश्वरकृष्णके लक्षणका (सांख्यका० ५) और तीसरा सांख्यसूत्रगत (सांख्यसू० १. ८९) लक्षणका है।

बौद्धों, जैनों और नैयायिकोंने सांख्यके प्रत्यक्ष लक्षणका खण्डन किया है। ध्यान रखनेकी बात यह है कि विन्ध्यवासीके लक्षणका खण्डन तो सभीने किया है पर ईश्वरकृष्ण जैसे प्राचीन सांख्याचार्यके लक्षणका खण्डन सिर्फ जयन्त (पृ० ११६) ही ने किया है पर सांख्यसूत्रगत लक्षणका खण्डन तो किसी भी प्राचीन आचार्यने नहीं किया है।

बौद्धोंमें प्रथम खण्डनकार दिङ्नाग (प्रमाणसमु० १. २७), नैयायिकोंमें प्रथम खण्डनकार उद्योतकर (न्यायवा० पृ० ४३) और जैनोंमें प्रथम खण्डनकार अकलङ्क (न्यायवि० १. १६५) ही जान पड़ते हैं।

आ० हेमचन्द्रने सांख्यके लक्षण खण्डनमें (प्र० मी० पृ० २४)पूर्वाचार्योंका अनुसरण किया है पर उनका खण्डन खासकर जयन्तकृत (न्यायम० पृ० १०९) खण्डनानुसारी है। जयन्तने ही विन्ध्यवासी और ईश्वरकृष्ण दोनोंके लक्षणप्रकारका खण्डन किया है, हेमचन्द्रने भी उन्हींके शब्दोंमें दोनों ही के लक्षणका खण्डन किया है।

ई० १९३९] [प्रमाण मीमांसा

धारावाहिक ज्ञान

भारतीय प्रमाणशास्त्रोंमें 'स्मृति' के प्रामाण्य-अप्रामाण्यकी चर्चा प्रथमसे ही चली आती देखी जाती है पर धारावाहिक ज्ञानोंके प्रामाण्य-अप्रामाण्य की चर्चा सम्भवतः बौद्ध परम्परासे धर्मकीर्त्तिके बाद दाखिल हुई। एक बार प्रमाण-शास्त्रोंमें प्रवेश होनेके बाद तो फिर वह सर्वदर्शनव्यापी हो गई और इसके पक्ष-प्रतिपक्षमें युक्तियाँ तथा वाद स्थिर हो गए और खास-खास परम्पराएँ बन गईं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाचस्पति, श्रीधर, जयन्त, उदयन आदि सभी[1] न्याय-वैशेषिक दर्शनके विद्वानोंने 'धारावाहिक' ज्ञानोंको अधिगतार्थक कहकर भी प्रमाण ही माना है और उनमें 'सूक्ष्मकालकला' के भानका निषेध ही किया है। अतएव उन्होंने प्रमाण लक्षणमें 'अनधिगत' आदि पद नहीं रखे।

मीमांसककी प्रभाकरीय और कुमारिलीय दोनों परम्पराओंमें भी धारावाहिक ज्ञानोंका प्रामाण्य ही स्वीकार किया है। पर दोनोंने उसका समर्थन भिन्न-भिन्न प्रकारसे किया है। प्रभाकरानुगामी शालिकनाथ[2] 'कालकला' का भान बिना माने ही 'अनुभूति' होने मात्रसे उन्हें प्रमाण कहते हैं, जिस पर न्याय-वैशेषिक परम्पराकी छाप स्पष्ट है। कुमारिलानुगामी पार्थसारथि[3], 'सूक्ष्मकालकला' का

---

१ 'अनधिगतार्थगन्तृत्वं च धारावाहिकविज्ञानानामधिगतार्थगोचराणां लोकसिद्धप्रमाणभावानां प्रामाण्यं विहन्तीति नाद्रियामहे। न च कालभेदेनानधिगतगोचरत्वं धारावाहिकानामिति युक्तम्। परमसूक्ष्माणां कालकलादिभेदानां पिशितलोचनैरस्माद्दृशैरनाकलनात्। न चाद्येनैव विज्ञानेनोपदर्शितत्वादर्थस्य प्रवर्तितत्वात् पुरुषस्य प्रापितत्वाच्चोत्तरेषामप्रामाण्यमेव ज्ञानानामिति वाच्यम्। नहि विज्ञानस्यार्थप्रापणं प्रवर्तनादन्यद्, न च प्रवर्तनमर्थप्रदर्शनादन्यत्। तस्मादर्थप्रदर्शनमात्रव्यापारमेव ज्ञानं प्रवर्त्तकं प्रापकं च। प्रदर्शनं च पूर्ववदुत्तरेषामपि विज्ञानानामभिन्नमिति कथं पूर्वमेव प्रमाणं नोत्तराण्यपि?।'—तात्पर्य० पृ० २१. कन्दली पृ० ६१. न्यायम० पृ० २२. न्यायकु० ४. १।

२ 'धारावाहिकेषु तह्युत्तरविज्ञानानि स्मृतिप्रमोषादविशिष्टानि कथं प्रमाणानि? तत्राह—अन्योन्यनिरपेक्षास्तु धारावाहिकबुद्धयः। व्याप्रियमाणे हि पूर्वविज्ञानकारणकलाप उत्तरेषामप्युत्पत्तिरिति न प्रतीतित उत्पत्तितो वा धारावाहिकविज्ञानानि परस्परस्यातिशेरत इति युक्ता सर्वेषामपि प्रमाणता।'—प्रकरणप० पृ० ४२-४३; बृहतीप० पृ० १०३।

३ 'नन्वेवं धारावाहिकेष्वुत्तरेषां पूर्वगृहीतार्थविषयकत्वादप्रामाण्यं स्यात्। तस्मात् 'अनुभूतिः प्रमाणम्' इति प्रमाणलक्षणम्। तस्मात् यथार्थमगृहीतग्राहि ज्ञानं प्रमाणमिति वक्तव्यम्। धारावाहिकेष्वप्युत्तरोत्तरेषां कालान्तरसम्बद्धस्यागृहीतस्य ग्रहणाद् युक्तं प्रामाण्यम्। सत्रपि कालभेदोऽतिसूक्ष्मत्वान्न परामृष्यत इति चेत्; अहो सूक्ष्मदर्शी देवानांप्रियः! यो हि समानविषयया विज्ञानधारया चिरमवस्थायोपरतः सोऽनन्तरक्षणसम्बन्धितयार्थं स्मरति। तथाहि—किमत्र घटोऽवस्थित इति पृष्टः कथयति—अस्मिन् क्षणे मयोपलब्ध इति। तथा प्रातरारभ्यैतावत्कालं मयोपलब्ध इति। कालभेदे त्वगृहीते कथमेवं वदेत्। तस्मादस्ति कालभेदस्य परामर्शः। तदाधिक्याच्च सिद्धमुत्तरेषां प्रामाण्यम्।'—शास्त्रदी० पृ० १२४-१२६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भान मानकर ही उनमें प्रामाण्यका उपपादन करते हैं क्योंकि कुमारिलपरम्परामें प्रमाणलक्षणमें 'अपूर्व' पद होनेसे ऐसी कल्पना बिना किये 'धारावाहिक' ज्ञानों के प्रामाण्यका समर्थन किया नहीं जा सकता। इस पर बौद्ध और जैन कल्पनाकी छाप जान पड़ती है।

बौद्ध-परम्परामें यद्यपि धर्मोत्तर[1] ने स्पष्टतया 'धारावाहिक' का उल्लेख करके तो कुछ नहीं कहा है, फिर भी उसके सामान्य कथनसे उसका झुकाव 'धारावाहिक' को अप्रमाण माननेका ही जान पड़ता है। हेतुबिन्दुकी टीकामें अर्चट[2] ने 'धारावाहिक' के विषयमें अपना मन्तव्य प्रसंगवश स्पष्ट बतलाया है। उसने योगिगत 'धारावाहिक' ज्ञानोंको तो 'सूक्ष्म कालकला' का भान मानकर प्रमाण कहा है। पर साधारण प्रमाताओंके धारावाहिकोंको सूक्ष्मकाल-भेदग्राहक न होनेसे अप्रमाण ही कहा है। इस तरह बौद्ध परम्परामें प्रमाताके भेद से 'धारावाहिक' के प्रामाण्य-अप्रामाण्यका स्वीकार है।

जैन तर्कग्रन्थोंमें 'धारावाहिक' ज्ञानों के प्रामाण्य-अप्रामाण्यके विषयमें दो परम्पराएँ हैं—दिगम्बरीय और श्वेताम्बरीय। दिगम्बर परम्परा के अनुसार 'धारावाहिक' ज्ञान तभी प्रमाण हैं जब वे क्षणभेदादि विशेष का भान करते हों और विशिष्टप्रमाजनक होते हों। जब वे ऐसा न करते हों तब प्रमाण नहीं हैं। इसी तरह उस परम्पराके अनुसार यह भी समझना चाहिए कि विशिष्ट-प्रमाजनक होते हुए भी 'धारावाहिक' ज्ञान जिस द्रव्यांशमें विशिष्टप्रमाजनक नहीं हैं उस अंशमें वे अप्रमाण और विशेषांशमें विशिष्टप्रमाजनक होनेके कारण प्रमाण हैं अर्थात् एक ज्ञान व्यक्तिमें भी विषय भेद की अपेक्षासे प्रामाण्या-

---

१ 'अत एव अनधिगतविषयं प्रमाणम्। येनैव हि ज्ञानेन प्रथममधिगतोऽर्थः तेनैव प्रवर्तितः पुरुषः प्राप्तिश्चार्थः तत्रैवार्थे किमन्येन ज्ञानेन अधिकं कार्यम्। ततोऽधिगतविषयमप्रमाणम्।'—न्यायबि० टी०. पृ० ३.

२ 'यदैकस्मिन्नेव नीलादिवस्तुनि धारावाहीनीन्द्रियज्ञानान्युत्पद्यन्ते तदा पूर्वेणाभिन्नयोगक्षेमत्वात् उत्तरेषामिन्द्रियज्ञानानामप्रामाण्यप्रसङ्गः। न चैवम्, अतोऽनेकान्त इति प्रमाणसंप्लववादी दर्शयन्नाह—पूर्वप्रत्यक्षक्षणेन इत्यादि। एतत् परिहरति—तद् यदि प्रतिक्षणं क्षणविवेकदर्शिनोऽधिकृत्योच्यते तदा भिन्नोपयोगितया पृथक् प्रामाण्यात् नानेकान्तः। अथ सर्वपदार्थेष्वेकत्वाध्यवसायिनः सांव्यवहारिकान् पुरुषानभिप्रेत्योच्यते तदा सकलमेव नीलसन्तानमेकमर्थं स्थिररूपं तत्साध्यां चार्थक्रियामेकात्मिकामध्यवस्यन्तीति प्रामाण्यमप्युत्तरेषामनिष्टमेवेति कुतोऽनेकान्तः?'—हेतु० टी० पृ० ३७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रामाण्य है। अकलङ्कके अनुगामी विद्यानन्द और माणिक्यनन्दीके अनुगामी प्रभाचन्द्रके टीकाग्रन्थोंका पूर्वापर अवलोकन उक्त नतीजे पर पहुँचाता[1] है। क्योंकि अन्य सभी जैनाचार्योंकी तरह निर्विवाद रूपसे 'स्मृतिप्रामाण्य' का समर्थन करनेवाले अकलङ्क और माणिक्यनन्दी अपने-अपने प्रमाण लक्षणमें जब बौद्ध और मीमांसकके समान 'अनधिगत' और 'अपूर्व' पद रखते हैं तब उन पदोंकी सार्थकता उक्त तात्पर्यके सिवाय और किसी प्रकारसे बतलाई ही नहीं जा सकती चाहे विद्यानन्द और प्रभाचन्द्रका स्वतन्त्र मत कुछ भी रहा हो।

बौद्ध[2] विद्वान् विकल्प और स्मृति दोनोंमें, मीमांसक स्मृति मात्रमें स्वतन्त्र प्रामाण्य नहीं मानते। इसलिए उनके मतमें तो 'अनधिगत' और 'अपूर्व' पदका प्रयोजन स्पष्ट है। पर जैन परम्पराके अनुसार वह प्रयोजन नहीं है।

श्वेताम्बर परम्पराके सभी विद्वान् एक मतसे धारावाहिज्ञानको स्मृतिकी तरह प्रमाण माननेके ही पक्षमें हैं। अतएव किसीने अपने प्रमाणलक्षणमें 'अनधिगत' 'अपूर्व' आदि जैसे पदको स्थान ही नहीं दिया। इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने स्पष्टरूपेण यह कह दिया कि चाहे ज्ञान गृहीतग्राहि हो तब भी वह अगृहीतग्राहिके समान ही प्रमाण है। उनके विचारानुसार गृहीतग्राहित्व प्रामाण्यका विघातक नहीं, अतएव उनके मतसे एक धारावाहिक ज्ञानव्यक्तिमें विषयभेदकी अपेक्षासे प्रामाण्य-अप्रामाण्य माननेकी जरूरत नहीं और न तो कभी किसीको अप्रमाण माननेकी जरूरत है।

श्वेताम्बर आचार्योंमें भी आ० हेमचन्द्रकी खास विशेषता है क्योंकि उन्होंने गृहीतग्राहि और ग्रहीष्यमाणग्राहि दोनोंका समत्व दिखाकर सभी धारावाहिज्ञानोंमें प्रामाण्यका जो समर्थन किया है वह खास मार्केका है—प्र० मी० पृ० ४। ई० १६३६] [प्रमाण मीमांसा

१. 'गृहीतमगृहीतं वा स्वार्थं यदि व्यवस्यति। तन्न लोके न शास्त्रेषु विजहाति प्रमाणताम् ॥'—तत्त्वार्थश्लो० १. १०. ७८। 'प्रमान्तराऽगृहीतार्थप्रकाशित्वं प्रपञ्चतः। प्रामाण्यं च गृहीतार्थग्राहित्वेपि कथंचन ॥'—तत्त्वार्थश्लो० १.१३.६४। 'गृहीतग्रहणात् तत्र न स्मृतेश्चेत्प्रमाणता। धारावाह्यविज्ञानस्यैवं लभ्येत केन सा ॥'—तत्त्वार्थश्लोक० १.१३.१५ 'नन्वेवमपि प्रमाणसंप्लववादिताव्याघातः प्रमाणप्रतिपन्नेऽर्थे प्रमाणान्तराप्रतिपत्तिरित्यचोद्यम्। अर्थपरिच्छित्तिविशेषसद्भावे तत्प्रवृत्तेरप्यभ्युपगमात्। प्रथमप्रमाणप्रतिपन्ने हि वस्तुन्याकारविशेषे प्रतिपद्यमानं प्रमाणान्तरमपूर्वार्थमेव वृक्षो न्यग्रोध इत्यादिवत्।'—प्रमेयक० पृ० १६।

२. 'यद् गृहीतग्राहि ज्ञानं न तत्प्रमाणं, यथा स्मृतिः, गृहीतग्राही च प्रत्यक्षपृष्ठभावी विकल्प इति व्यापकविरुद्धोपलब्धिः'—तत्त्वसं० प० का० १२६८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org